पुस्तक अंश

पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट

रुचिराम साहनी

पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट और इससे जुड़ी कार्यशाला की देखरेख में मेरा बहुत समय खपता था। इसलिए मैं अपनी ज़िंदगी की कहानी में इसका जिक्र करना ज़रूरी समझता हूं। इस इंस्टीट्यूट का विचार गवर्नमेंट कॉलेज के प्रोफेसर जे.सी. ओमन के निकट संपर्क से तभी पनपा था, जब मैं कॉलेज में एम.ए. की पढ़ाई कर रहा था। कलकत्ता जाने से पहले हम अक्सर इस इंस्टीट्यूट की ज़रूरत और काम-काज के बारे में चर्चा करते रहते थे। जब सन् 1885 की गर्मियों में मैं कलकत्ता से वापस आया तो मैंने प्रोफेसर ओमन को सरकार महोदय की संस्था के बारे में बताया। फिर हमने पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट के नाम से संस्था स्थापित की। प्रोफेसर

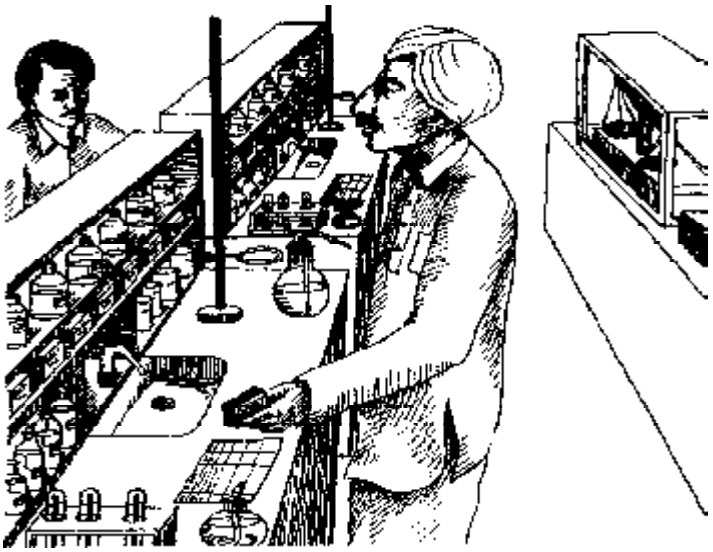

चित्र: अमिताभ पांडेय

19वीं सदी में जब भारतीय पुनर्जागरण काल की शुरुआत हुई तो सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक क्षेत्रों में एक नई बयार चल पड़ी। ऐसे में विज्ञान भला कैसे पीछे रहता! विविध वैज्ञानिक शोधकार्यों के मार्फत पी.सी. राय, जे.सी. बोस, एस.एन. बोस, एम.एन. साहा, सी.वी. रमन जैसे अनेक वैज्ञानिकों ने अपना वैचारिक योगदान दिया।

प्रोफेसर रुचिराम साहनी का नाम भी इसी फेहरिस्त में शामिल है। उन्होंने आम जनता में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए काम किया। इसके लिए उन्होंने कुछ हमख्याल लोगों के साथ मिलकर एक संस्था की नींव रखी। रुचिराम साहनी ने आम लोगों की भाषा में आधुनिक विज्ञान में हो रही खोजों, जन सामान्य की रुचि के विषयों पर व्याख्यान माला और कुछ वैज्ञानिक प्रयोगों के प्रदर्शन जैसे माध्यमों को चुना। एक विज्ञान प्रचारक के रूप में उनके अनुभवों में से कुछ के बारे में हम यहां पढ़ेंगे।

ओमन इसके मानद सचिव बने और मैं संयुक्त सचिव। इस इंस्टीट्यूट के ज़रिए हम प्रांत भर में वैज्ञानिक जानकारी का प्रचार-प्रसार करना चाहते थे। हमने सोचा कि इसके लिए अंग्रेज़ी और पंजाबी भाषा में जगह-जगह लोकप्रिय व्याख्यान आयोजित किए जाएं। व्याख्यानों के साथ प्रयोग करके दिखाए जाएं और स्लाइडों के मार्फत चित्र भी दिखाए जाएं। साथ ही कुछ पुस्तिकाएं प्रकाशित करने की योजना भी बनाई। इसमें रासायनिक उद्योगों को खास जगह दी गई। म्यानी (भेड़ा के पास) के मशहूर मालिक ज्वाला सहाय ने साबुन, नील वगैरह बनाने की तकनीक पर लिखे गए छोटे पर्चों पर नकद इनाम देना शुरू किया। इससे तकनीकी शिक्षा के प्रसार को बहुत बढ़ावा मिला।

हमारी पहली योजना के तहत प्रोफेसर ओमन ने बिजली और चुंबक से जुड़े अनेक रोचक विषयों पर लोकप्रिय व्याख्यान दिए। मेडिकल कॉलेज के डॉ. सी.सी. कैलब के शरीर-रचना से संबंधित कुछ चुने हुए विषयों पर व्याख्यान हुए। उनके दो व्याख्यान जनता के बीच इतने लोकप्रिय हुए कि उन्हें दुबारा आयोजित करवाना पड़ा। यहां मैं बता दूं कि इस जनता में आम लोग बहुत कम थे, ज़्यादातर विद्यार्थी और शिक्षक थे। कैलब के जिन दो

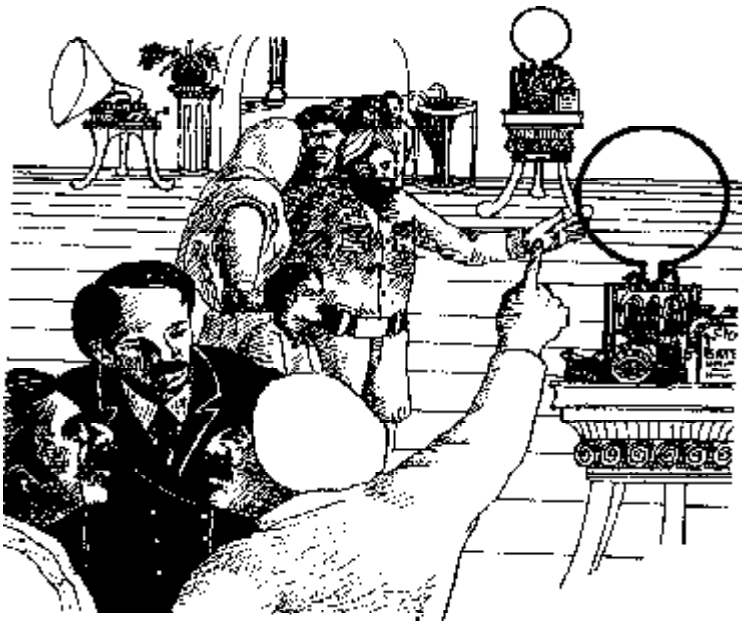

व्याख्यानों का मैं ज़िक्र कर रहा हूं, उनके विषय थे - मानव में भय और ज़हरीला व गैर-ज़हरीला धुआं। इसके बाद और भी बहुत से लोग इंस्टीट्यूट की गतिविधियों में हिस्सा लेने आगे आने लगे। इनमें से ज़्यादातर कॉलेज के प्रोफेसर थे। इनमें से एक प्रोफेसर साहब को अपना व्याख्यान दिलचस्प और लोकप्रिय बनाने में खास महारत हासिल थी। उनका नाम था डॉ. ग्रांट। इसके लिए वह प्रयोगों की तैयारी में बहुत समय लगाते थे। लेकिन उनके ज़्यादातर व्याख्यान इंग्लैंड के फैराडे इंस्टीट्यूट या किसी अन्य संस्था में दिए गए व्याख्यानों की नकल होते थे। वे इन व्याख्यानों की प्रकाशित प्रति से अपना व्याख्यान तैयार कर लेते थे। उन्होंने *रोमांस ऑफ साइंस* शृंखला के तहत प्रकाशित बहुत से लोकप्रिय व्याख्यानों से अपने व्याख्यान तैयार किए, जो बेहद कामयाब रहे। इनमें प्रमुख थे - सी.वी. ब्वायज़ का *सोप बबल्स* (साबुन के बुलबुले), फैराडे का *कैमिकल हिस्ट्री ऑफ द कैंडिल* (मोमबत्ती का रासायनिक इतिहास), पेरी का *स्पिनिंग टॉप्स* (घूमते लट्टू), *द स्टोरी ऑफ टेंडर बॉक्स* (टेंडर बॉक्स की कहानी) वगैरह। अक्सर वह इन पुस्तिकाओं से भाषा और कहानी जैसी की तैसी उड़ा लेते और व्याख्यान में इनके लिए आभार का एक शब्द भी नहीं कहते।

मैं इंस्टीट्यूट की स्थापना के समय से ही इसका संयुक्त सचिव था, लेकिन शुरू के दो साल मुझे शिमला में गुज़ारने पड़े।

जैसा मैं पहले भी लिख चुका हूं, मैंने सरकारी नौकरी की शुरुआत भारत सरकार के *सेकंड असिस्टेंट मीटियोरोलॉजिकल रिपोर्टर* के रूप में शिमला में की थी। जनाब डब्ल्यू.एल. डलास फर्स्ट रिपोर्टर थे। जब मैं मौसम विभाग में था, तो मैंने पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट में तीन व्याख्यान दिए और तीनों ही हिंदुस्तान के मौसम के बारे में थे। इनमें से दो में महादेव गोविंद रानाडे ने अध्यक्षता की थी। वे सन् 1886 में किसी कमेटी के सदस्य बनकर शिमला आए थे। मुझे याद पड़ता है कि यह कमेटी दक्कन में ग्रामीण कर्ज़दारी के कारण हुए दंगों के सिलसिले में बनाई गई थी। कमेटी के काम से रानाडे महोदय कई महीनों तक शिमला में रहे। लोगों ने इस मौके का फायदा उठाते हुए उनसे खूब मुलाकातें की और उनके विचारों को सुना। वेदों के महान अध्येता शंकर पांडुरंग पंडित भी उनके साथ रहते थे। इसलिए लोगों को दुहरा फायदा होता था। शंकर पांडुरंग पंडित, यशस्वी नेहरू परिवार से जुड़े जनाब एस. पंडित के चाचा थे।

शिमला में व्याख्यान माला

मौसम पर दिए गए मेरे तीनों व्याख्यान गवर्नमेंट कॉलेज के हॉल में हुए थे। मुझे यह देखकर बड़ा ताज्जुब होता था और खुशी भी होती थी कि व्याख्यान में बताए गए तथ्यों और समस्याओं की जनाब रानाडे को बहुत अच्छी जानकारी थी। शंकर पांडुरंग पंडित भी व्याख्यानों में मौजूद रहते थे। वे दोनों ही व्याख्यान में भरपूर दिलचस्पी लेते थे और हर व्याख्यान के

आखिर में कुछ सवाल भी पूछते थे। व्याख्यान के साथ दिखाने के लिए मैं अपने दफ्तर से कुछ चार्ट भी लाता था। व्याख्यान में दिखाने के लिए मैंने खासतौर से एक बड़ा चार्ट बनवाया था, जिसमें मॉनसून और चक्रवाती तूफानों के आने का रास्ता दिखाया गया था। व्याख्यानों को सुनने के लिए बहुत से हिंदुस्तानी और युरोपीय साहब लोग आते थे और दिलचस्पी से व्याख्यान सुनते थे। लेकिन श्रोताओं में सबसे ज़्यादा तादाद बंगाली बाबुओं की रहती थी, क्योंकि उन दिनों भारत सरकार के सभी दफ्तरों में इनकी भरमार थी। मुझे उस वाकिए की अच्छी तरह याद है, जब एक व्याख्यान के दौरान बंगाली बाबुओं ने अपने ज़ोरदार ठहाकों से हॉल सिर पर उठा लिया था। हुआ यह कि व्याख्यान के दौरान मैंने कहा था कि हो सकता है भारत सरकार बिना बंगाली बाबुओं के शिमला में दफ्तर चला ले, पर उत्तरी भारत उस मॉनसूनी बरसात के बिना गुज़ारा नहीं कर सकता, जो पूरी की पूरी बंगाल से आती है। बंबई से चली ज़्यादातर मॉनसूनी हवाएं रास्ते में ही बरस जाती हैं और जो कुछ बचती हैं उन्हें अरावली की पर्वत ृंखला रोक लेती है। मैंने बताया कि पंजाब के हरे-भरे उत्तरी ज़िलों और रूखे-सूखे दक्षिण-पूर्वी ज़िलों के बीच खेती-बाड़ी में जो अंतर है वह इसी बंगाल और बंबई की मॉनसूनी हवाओं के कारण है। सभा के अध्यक्ष की हैसियत से रानाडे महोदय ने हमारे प्रांत की अर्थव्यवस्था में बंबई के योगदान के बारे में कई नई बातें बताईं, क्योंकि वे खुद पश्चिमी प्रेसिडेंसी के रहने वाले थे। इसी तरह मेरे मुस्लिम दोस्तों को यह जानकर खुशी होगी कि सर्दियों में होने वाली बरसात के लिए हम फारस के आभारी हैं। यह बरसात प्रति-चक्रवात से आती है। उस समय तक इनकी फारस से उत्पत्ति लगभग स्थापित हो चुकी थी। तीन व्याख्यानों में से एक व्याख्यान में मैंने यह बताया था कि सर्दी से गर्मी और गर्मी से सर्दी का मौसम बदलने के दौरान कौन-कौन सी मौसमी घटनाएं घटती हैं। इसमें मैंने धूल भरी आंधी, तूफान, ओले गिरने जैसी मौसमी घटनाओं की मौसम के बदलाव में भूमिका भी समझाई थी।

लालटेन स्लाइड

मैं बता चुका हूं कि व्याख्यानों में चार्ट दिखाने के अलावा लालटेन स्लाइडें बनवाना आसान नहीं था। यहां तक कि आज भी लोकप्रिय व्याख्यानों के लिए साज-सामान मिलना बहुत मुश्किल है और लालटेन स्लाइड की व्यावसायिक सुविधा तो सिर्फ कुछ महानगरों में ही मिल पाती है। मैं अध्यापकों को बताना चाहूंगा कि इपीडायस्कोप जैसी आधुनिक सुविधा के बिना भी लोकप्रिय व्याख्यानों के लिए स्लाइडें बनाई जा सकती हैं। शिमला में व्याख्यान देने के लिए मैंने इसी तरह स्लाइडें बनाई थीं। इसके लिए मैंने पहले लालटेन स्लाइड की नाप के कांच के कुछ टुकड़ों पर मोमबत्ती की लौ से कालिख जमा दी और फिर उन पर पिन की नोक से तीर, रेखाएं वगैरह खींच दीं। इसी तरह तूफान जैसे विषयों के व्याख्यानों में तीरों से हवा की दिशा दिखाकर व्याख्यान को दिलचस्प बनाया जा सकता है। इस पर अलग से कुछ खर्च भी नहीं करना पड़ता। मेरे व्याख्यानों में स्लाइडें खूब जमीं। कुछ समय बाद जब मैं लाहौर के गवर्नमेंट

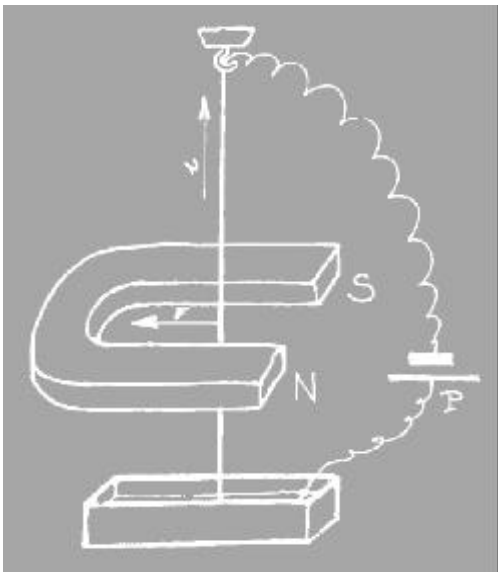

लालटेन स्लाइड - कांच पर मोमबत्ती की लौ से कालिख चढ़ाकर बनाई जाती थीं। इनका व्याख्यानों के दौरान काफी महत्त्व होता था।

कॉलेज में पढ़ाने लगा तो मैंने फिर से ये व्याख्यान दिए। प्रोफेसर ओमन की सलाह पर मैंने इनमें से एक व्याख्यान को पूरा लिखा और पैम्फलेट के रूप में छपवाया भी। मुझे दुःख है कि अब इसकी एक भी प्रति उपलब्ध नहीं है। यह व्याख्यानों की दूसरी ृंखला थी, जिसे मैंने शिमला के बाद लाहौर में कुछ विस्तार करके दोहराया था। ये व्याख्यान मॉनसूनी बरसात और तूफानों के बारे में थे।

लाहौर में रंग जमाया स्लाइडों ने

लाहौर में व्याख्यानों को दुहराते समय मैंने अपनी स्लाइडों को एक नया रूप दिया। इससे वे पर्दे पर और भी साफ़ दिखाई देने लगीं। मोमबत्ती की लौ से कांच के टुकड़ों पर कालिख जमाने की जगह, अब मैं उन्हें गोंद के घोल में डुबो देता था और फिर धूप में सूखा लेता था। इसका मकसद यह था कि कांच की सतह थोड़ी खुरदरी हो जाए ताकि उस पर हिंदुस्तान का नक्शा, तीर वगैरह आसानी से बनाए जा सकें। चित्र बनाने के लिए छापेखाने की स्याही बहुत बढ़िया रहती है। अपने लोकप्रिय व्याख्यानों के लिए मैं फोटोग्राफी से तैयार स्लाइडों की जगह इन साधारण स्लाइडों का इस्तेमाल करना बेहतर समझता था। इसकी वजह सिर्फ यह नहीं थी कि इसमें पैसा नहीं खर्च होता था, दरअसल इसमें समय बहुत कम लगता था। फोटोग्राफर को चिट्ठी लिखकर स्लाइडें तैयार करवाने का झंझट भी मोल नहीं लेना पड़ता था। इसका सबसे बड़ा फायदा यह था कि व्याख्यान सुनने वाले बहुत से लोगों के मन में अपने व्याख्यान के लिए इसी तरह स्लाइडें तैयार करने का विचार जम जाता था। हां, इतना अवश्य है कि कुछ खास कामों के लिए फोटोग्राफिक स्लाइडों का इस्तेमाल करना ज़रूरी होता है।

मैं अध्यापकों को स्लाइड बनाने के कुछ और आसान तरीके भी बताना चाहूंगा। अपने व्याख्यानों के लिए मैं इनमें से कई का इस्तेमाल कर चुका हूं (अध्यापक खुद ही यह तय कर सकेंगे कि उनके लिए कब, कौन-सा तरीका ठीक रहेगा)।

1. ट्रेसिंग पेपर पर किसी नुकीले ड्राइंग पेन से चित्र या नक्शे को उतार लें। फिर उसे कांच के टुकड़े पर चिपका दें। ज़्यादातर मामलों में सिर्फ कोने चिपकाना ही काफी होगा। अगर कांच के टुकड़े पतले हों और चित्र चटक काली स्याही से बनाया गया हो तो ट्रेसिंग पेपर को दो कांच के टुकड़ों के बीच दबाया भी जा सकता है। कांच के टुकड़ों को पतले, पर मज़बूत सूती धागे से बांध दें। मैं रबर बैंड लगाने की सलाह नहीं दूंगा। ट्रेसिंग पेपर को बहुत थोड़ा-सा तेलिया कर देने से चित्र और भी साफ दिखाई देता है।
2. ऊपर बताए गए तरीके से कई रंगों वाला चित्र भी आसानी से बनाया जा सकता है।
3. अगर चित्र को सिर्फ रेखाओं से बनाना मुमकिन हो तो इसे कागज़ पर बनाकर सीधे काटा जा सकता है। इसके लिए मोटे व भूरे कागज़ का इस्तेमाल करना चाहिए, ताकि इसमें से रोशनी न गुज़र सके। इससे अंधेरी पृष्ठभूमि में रोशनीदार चित्र दिखाई देगा।
4. कुछ मामलों में मैंने चित्र को काटकर सीधे कांच के टुकड़े पर चिपका देना या दो कांच के टुकड़ों के बीच रखना ज़्यादा सुविधाजनक पाया है।

मुझे यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि अब विज्ञान को दिलचस्प तरीके से समझाने के लिए मैजिक लैंटर्न (चित्रदर्शी) का इस्तेमाल बिल्कुल बंद हो गया है। यहां तक कि पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट द्वारा आयोजित किए जाने वाले लोकप्रिय वैज्ञानिक व्याख्यानों जैसे क्रिया-कलापों का चलन

रुचिराम साहनी

भी खत्म ही हो गया है। अब इनके बारे में शायद ही कभी कुछ सुनाई देता हो।

हमारे प्रांत में वैज्ञानिक जानकारी के प्रचार-प्रसार के प्रति उदासीनता आ गई है। इसकी वजहें मैं अभी नहीं बताऊंगा। मैं हमारे प्रांत शब्द का प्रयोग जानबूझकर कर रहा हूं क्योंकि मुझे देश के अन्य हिस्सों की दशा के बारे में जानकारी नहीं है। जैसा मैं पहले भी बता चुका हूं, सन् 1885 में जब मैं कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज का छात्र था तो मैंने डॉ. महेंद्र लाल के संस्थान में कई बेहद प्रेरणादायक लोकप्रिय व्याख्यानों को सुना था। कलकत्ता से लौटकर आने के तुरंत बाद जब हमने लाहौर में *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* की

स्थापना की तो महेंद्र लाल का संस्थान ही हमारा मॉडल था। मैं यह भी पहले बता चुका हूं कि वैज्ञानिक जानकारी के प्रचार-प्रसार के मकसद से एक सोसायटी की स्थापना करने का विचार कुछ महीने पहले प्रोफेसर जे.सी. ओमन के दिमाग में पनपा था। कलकत्ता से लौटकर जब मैंने उन्हें सेंट ज़ेवियर कॉलेज के फादर लैफोंट द्वारा दिए गए लोकप्रिय व्याख्यानों के बारे में बताया तो वे बिना कोई समय गंवाए सोसाइटी की स्थापना में जुट गए। इस तरह वह कल्पना साकार हुई, जिस पर हम पहले सिर्फ चर्चा किया करते थे।

लोकप्रिय व्याख्यान

पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट के लोकप्रिय व्याख्यानों ने पूरे प्रांत के लोगों के मन में जो दिलचस्पी और उत्साह पैदा किया उसका वर्णन करना बेहद मुश्किल है। यह उत्साह देशी रियासतों, यहां तक कि क्वेटा में भी देखा गया। चारों ओर से हमारे व्याख्यानों की मांग होने लगी। कुछ ही समय बाद हमने मुफस्सिल जगहों पर व्याख्यान देने के लिए मामूली-सी फीस लेना भी शुरू कर दिया, ताकि व्याख्याता और आमतौर पर उसके साथ जाने वाले प्रयोगशाला सहायक के सफर पर खर्च होने वाली रकम का कुछ हिस्सा मिल सके। गौरतलब है कि उनके साथ व्याख्यान के लिए ज़रूरी उपकरण वगैरह भेजने पर भी कुछ रकम खर्च होती थी। मुफस्सिल जगहों पर जादुई लालटेन (मैजिक लैंटर्न) की मदद से दिए जाने वाले व्याख्यानों की फीस के बारे में मुझे कुछ ठीक से याद नहीं आता, लेकिन सन् 1896 के बाद मुफस्सिल जगहों पर दिए जाने वाले लोकप्रिय व्याख्यानों के लिए यह फीस एक से दो आने के बीच होती थी। अगर व्याख्याता वहीं का स्थानीय विद्वान हो तो भी यह फीस ली जाती थी। वजह यह थी कि ऐसे मामलों में भी अक्सर उपकरणों और प्रयोगशाला सहायक को मुख्यालय से ही भेजना पड़ता था।

वैसे मैं यह बता दूं कि दस में से नौ जगहों पर व्याख्यान देने के लिए मुझे ही जाना पड़ता था। कुछ अन्य हालात के अलावा इसकी कुछ खास वजहें भी थीं। दयाल सिंह विल प्रोबेट मामले में उलझने से पहले यानी सन् 1890 से 1898 के बीच मैंने लाहौर और पंजाब के अन्य शहरों में इतने व्याख्यान दिए लेकिन मुझे अपने व्याख्यान के लिए विषय खोजने में कभी कोई दिक्कत नहीं आई। मैं विषय के हिसाब से ज़रूरी उपकरण भी आसानी से तैयार कर लेता था। जो व्याख्यान किसी एक जगह पर लोकप्रिय होता था, वह अन्य जगहों पर भी दिलचस्पी से सुना जाता था। अक्सर किसी एक जगह दिए गए व्याख्यान को दूसरी जगह दुहराने की मांग आती थी।

मेरे दोस्तों और शागिर्दों का दायरा बहुत बढ़ गया था। ये लोग मुझसे बार-बार अपने शहर में लोकप्रिय व्याख्यान देने की निजी तौर पर गुज़ारिश करते। मेरे कुछ छात्रों के प्रभावशाली पिता अपने निमंत्रण में इतने आकर्षक प्रस्ताव रख देते कि उन्हें ठुकराना मुश्किल हो जाता। एक ऐसा ही निमंत्रण कपूरथला के वज़ीरे आज़म ने भेजा था, जिनके दो पुत्र उस समय गवर्नमेंट कॉलेज में इंटरमीडिएट में पढ़ रहे थे। उनके निमंत्रण के साथ रियासत के एक आला अफसर का खत भी था, जो मेरा

निजी दोस्त था और पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट का मददगार भी था। मैंने कपूरथला में तीन लोकप्रिय व्याख्यान दिए और तीनों का ही पूरा खर्च रियासत ने उठाया। इसी तरह मैंने पटियाला में दो और मंडी व बहावलपुर में एक-एक व्याख्यान दिए। बहावलपुर में मेरा व्याख्यान उस समय हुआ जब मैं *इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल* की हैसियत से वहां गया था। दरअसल उस समय मेरा एक सिख छात्र रियासत का आला अफसर था और व्याख्यान देने के लिए उसने मुझसे बहुत गुज़ारिश की थी। ये व्याख्यान सब तरह के श्रोताओं के बीच बेहद लोकप्रिय हुए। आज भी मुझे कभी-कभी सफ़ेद दाढ़ी वाले कुछ ऐसे लोग मिल जाते हैं, जिन्होंने अपनी किशोरावस्था में किसी मुफस्सिल जगह पर मेरा व्याख्यान सुना था। मेरा अनुमान है कि मैंने लगभग 500 ऐसे व्याख्यान दिए होंगे।

श्रोता और रोचक विषय

इस तादाद से चौंकने की ज़रूरत नहीं है। बरसों तक मैंने लाहौर के बावली साहब के अहाते में (सुनहरी मस्जिद के पास) हर साल पंजाबी भाषा में कोई 20 व्याख्यान दिए। सभी व्याख्यानों को आसान प्रयोगों से समझाया जाता था। इसके उपकरण इतने मामूली होते थे कि लोग खुद बना लें। भारी तादाद में आए श्रोताओं में ज़्यादातर श्रोता आसपास के बाज़ारों के दुकानदार होते थे। थोड़ी-बहुत तादाद में दफ्तरों के अंग्रेज़ी जानने वाले बाबू भी मौजूद रहते थे। मेरे द्वारा दिए गए कुल व्याख्यानों में ये व्याख्यान सबसे ज़्यादा कामयाब और लोकप्रिय साबित हुए। हफ्ते दर हफ्ते दुकानदारों की भीड़ बढ़ती ही जाती थी। ये दुकानदार उस समय व्याख्यान सुनने आते थे, जब ज़्यादातर लोग बाज़ार में खरीददारी करने निकलते हैं। यह उनकी गहरी दिलचस्पी का पक्का सबूत है। दुकानदारों की बातचीत में अक्सर मुझे ऐसे शब्द मिल जाते थे, जो जाने-पहचाने वैज्ञानिक उपकरणों को पंजाबी नाम देने में बहुत काम आते थे। एक बार एक दुकानदार इलेक्ट्रिक प्लेट मशीन को 'बिजली दा चरखा' के नाम से पुकार रहा था। मैंने सुना तो मुझे लगा कि यह इस मशीन का बहुत ही सटीक नाम है। कभी-कभी जब मैं बोलते हुए किसी नाम या शब्द के लिए अटक जाता, तो मैं श्रोताओं से ही सही नाम या शब्द बताने के लिए कहता। शायद ही कभी ऐसा हुआ हो कि मेरी मुश्किल दूर न हुई हो। अक्सर एक बेहद सटीक, बोलचाल का और आसानी से समझ में आने वाला शब्द मिल जाता। भौतिकी और रसायन के आसान तथ्यों और सिद्धांतों को समझने के अलावा हर साल कम से कम 10 व्याख्यान आम विषयों पर भी दिए जाते थे, जैसे 'टेलीग्राफ का तार कैसे बोलता है', 'आम लौ', 'सन् 1880 से पहले लाहौरियों द्वारा पिया जाने वाला पानी', 'पानी जो लाहौरी पीते हैं', 'शुद्ध और अशुद्ध हवा', 'खिलौने और उनकी शिक्षा', 'साबुन बनाना', 'इलेक्ट्रोप्लेटिंग', 'मानव की सेवा में बिजली' (तीन या चार व्याख्यानों की शृंखला), 'कांच बनाना', 'पंजाब और उसकी नदियां' (इसके साथ चिकनी मिट्टी में बना एक नक्शा भी दिखाया जाता था), वगैरह। ये कुछ विषय मैंने सिर्फ इसलिए बताए हैं कि आप यह जान लें कि बावली साहब में हर महीने

दिए जाने वाले व्याख्यानों के विषय आमतौर पर कैसे होते थे। इनमें से कई व्याख्यान मुफस्सिल जगहों पर या लाहौर में अन्य जगहों पर दोहराए जाते थे। खासतौर से वे व्याख्यान ज़रूर दोहराए जाते थे, जिनका विषय कुछ ऊंचा होता था। यह कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि उस समय पूरे प्रांत में वैज्ञानिक अध्ययन के लिए ज़बर्दस्त उत्साह पैदा हो गया था। यहां मैं एक और तथ्य बताना चाहूंगा, जिसे पूछताछ करके मैंने पक्का भी कर लिया है - उस समय पंजाब में हिंदुस्तान के किसी भी प्रांत की तुलना में सबसे ज़्यादा स्कूलों में विज्ञान की एक नियमित विषय के रूप में पढ़ाई हो रही थी और पंजाब में ही सबसे ज़्यादा छात्र प्रारंभिक भौतिकी और रसायन की पढ़ाई कर रहे थे।

इन लोकप्रिय व्याख्यानों के बारे में दो शब्द और कहना चाहूंगा। वैज्ञानिक विषयों के प्रति व्यापक दिलचस्पी पैदा करने और आम आदमी तक उपयोगी जानकारी पहुंचाने के लिए मैं अक्सर नई और दिलचस्प वैज्ञानिक खोजों को भी अपने लोकप्रिय व्याख्यानों का विषय बना लिया करता था, ये व्याख्यान मेरी कल्पना से कहीं ज़्यादा लोकप्रिय साबित हुए। नई खोजों जैसे एक्स-रे, एडिसन का फोनोग्राफ और बेतार का टेलीग्राफ के प्रदर्शनों में लोगों ने इतनी गहरी दिलचस्पी दिखाई कि एक ही जगह पर इसे दुबारा, तिबारा और बार-बार दिखाए जाने की मांग होने लगी। इन व्याख्यानों का सारा खर्च फीस से ही पूरा किया जाता था। बेतार का पहला प्रदर्शन मूल हर्टज़ियन बिजली की तरंगों और प्रायोगिक लौह-निकेल कोहेरर की मदद से दिखाया गया। फिर भी लोगों ने इसमें जो गहरी दिलचस्पी ली, वह काबिले तारीफ़ थी।

इस विषय पर हिंदुस्तान में दुहराए गए ये शायद पहले प्रयोग थे। एक दिलचस्प बात और बताना चाहूंगा। कुछ समय बाद जब राजा जयकिशन कौल, डॉ. बालकिशन कौल और राजा सर दया किशन कौल के पिता पंडित सूरज कौल को राजा की पदवी प्रदान की गई तो उनके सम्मान में सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किया गया। कार्यक्रम के आयोजकों (सर) प्रोतुल चंद चटर्जी और (सर) शादी लाल ने मुझसे इस कार्यक्रम में वायरलेस कोहेरर के प्रदर्शन की गुज़ारिश की। कोई 150 फुट दूर स्थित दो केंद्रों के बीच बेतार के सिग्नल भेजे गए। बहुत से शक्की लोग तरंगों के रास्ते से गुज़र-गुज़र कर देखने लगे कि कहीं कोई महीन-सा तार चालाकी से छिपाया तो नहीं गया है। कुछ लोगों की सलाह पर लेफ्टीनेंट गवर्नर सर मैकवर्थ यंग ने सभी मेहमानों (300-400) से कहा कि आप लोग बीच की जगह में खड़े हो जाएं ताकि बेतार की तरंगें आपके शरीर से होकर गुज़रें। सर मैकवर्थ ने खुद भी इस प्रयोग में और मेरे द्वारा दिखाए गए अन्य प्रयोगों में गहरी दिलचस्पी ली। उन्होंने दो बार अपने यूरोपीय मेहमानों के सामने ये प्रयोग दिखाने के लिए मुझे खासतौर से अपने घर पर आमंत्रित किया। वहां डिनर (रात्रि-भोज) के बाद प्रयोगों का प्रदर्शन किया गया।

पंजाबी में प्रचार-प्रसार

यहां एक बात मैं उन लोगों के फायदे के लिए बताना चाहूंगा, जो विश्वविद्यालय की बैठकों या अन्य जगहों पर पंजाबी

और अन्य देशी भाषाओं के माध्यम से कॉलेज की पढ़ाई का विरोध करते हैं। ऊपर बताई गई गार्डन पार्टी में मैंने पहले सभी मेहमानों को बेतार के फायदे की जानकारी अंग्रेज़ी में दी। लेकिन वहां कुछ बड़े रईस भी मौजूद थे, जो अंग्रेज़ी नहीं समझते थे। इसलिए सर मैकवर्थ ने मुझसे कहा कि क्या आप यह बात पंजाबी में भी बता सकते हैं। मैंने तुरंत सारी बातें पंजाबी में समझा दीं। तब लेफ्टीनेंट गवर्नर साहब ने उस समय के माने हुए वकील जनाब मदन गोपाल, एम.ए., बार-एट-लॉ से पूछा कि क्या यह जनाब बुजुर्गों को अपनी बात समझाने में कामयाब रहे हैं। इस पर जनाब मदन गोपाल ने कहा, ''योर ऑनर, दरअसल मैं खुद अंग्रेज़ी की बजाय पंजाबी में ज़्यादा बेहतर समझ पाया हूं।'' जबकि जनाब मदन गोपाल पंजाबी नहीं थे। वे दिल्ली के रहने वाले थे।

पंजाबी माध्यम से वैज्ञानिक जानकारी के प्रचार-प्रसार की बाबत मैं एक छोटी-सी घटना के बारे में और बताना चाहूंगा, जो मेरे लोकप्रिय वैज्ञानिक व्याख्यान के दौरान घटी थी। रावलपिंडी में व्याख्यान खत्म होने के बाद वहां मौजूद सर बाबा खेम सिंह बेदी मेरे पास आए और कहने लगे कि इससे पहले मुझे कभी यह भरोसा नहीं हुआ था कि विज्ञान को पंजाबी भाषा के माध्यम से पढ़ाना मुमकिन हो सकता है। उन्होंने मुझ पर बहुत दबाव डाला कि आप दो-तीन दिन के लिए मेरे मेहमान बनें और मेरे बाग में लोकप्रिय विज्ञान के कुछ व्याख्यान दें। बाबा खेम सिंह सिखों के धार्मिक नेता थे। इसलिए पूरे धानी पाठोवर में उनके बहुत अनुयायी थे। उनके यहां आयोजित दोनों व्याख्यानों में उन्होंने खुद ही अध्यक्ष की कुर्सी संभाली। श्रोताओं में ज़्यादातर लोग गांवों से आए सिख थे। इनमें से अधिकतर को खासतौर से व्याख्यान सुनने के लिए ही बुलाया गया था।

संस्थान के अंतिम दिन

पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट के व्याख्यानों की व्यापक लोकप्रियता की वजह से संस्था के लिए विशाल धन राशि जुटाना बहुत आसान हो गया। हमने कुछ धन वैज्ञानिक उपकरणों और विज्ञान पुस्तकालय के लिए किताबों की खरीद पर खर्च कर दिया। इसके अलावा जब हमने संस्थान बंद करने का फैसला लिया तो हमारे पास 3000 रुपये नकद थे। दरअसल कुछ ऐसे हालात बन गए कि हमें मजबूरन संस्था को बंद करना पड़ा। वैसे हमारी योजना यह थी कि लाहौर में एक लेक्चर हॉल बनवाया जाए, ताकि इंस्टीट्यूट को स्थाई जगह मिल जाए। पर ऐसा नहीं हो सका। सन् 1905 या उसके आसपास लाहौर मेडिकल कॉलेज के कुछ छात्रों ने मिलकर एक छोटी-सी संस्था बनाई और उसे नाम दिया - *सोसाइटी फॉर द प्रमोशन ऑफ साइंटिफिक नॉलेज* (एस.पी.एस.के.)। इसके उद्देश्य भी लगभग पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट जैसे ही थे। उन्होंने डॉ. सी.सी. कैलब को संस्था का स्थाई अध्यक्ष बना दिया। इस समय तक प्रोफेसर ओमन हिंदुस्तान से वापस जा चुके थे और मैं दयाल सिंह विल वाले गंभीर और टेढ़े मुकदमे में बुरी तरह उलझ गया था। यह मुकदमा कोई दस साल तक चला। डॉ. सी.सी. कैलब और संस्था के कुछ अन्य प्रभावशाली कार्यकर्ता नई सोसाइटी के कार्यकलापों में ज़्यादा दिलचस्पी लेने

लगे थे। एक जैसे उद्देश्य वाली दो संस्थाओं का साथ-साथ काम करना मुमकिन नहीं था।

गवर्नमेंट कॉलेज में जनाब ए.एस. हेम विज्ञान विभाग के अध्यक्ष बन कर आ चुके थे। उन्होंने भी हमारे रास्ते में रोड़े अटकाना शुरू कर दिया था। ऐसे हालात में तय किया गया कि इंस्टीट्यूट की सारी संपत्ति को डॉ. सी.सी. कैलब की अध्यक्षता वाली नई संस्था को सौंप दिया जाए। वैसे भी डॉ. कैलब हमारी इंस्टीट्यूट के बेहद सक्रिय सदस्यों में से एक थे। इस तरह नकद धनराशि समेत इंस्टीट्यूट की किताबें, उपकरण वगैरह एस.पी.एस.के. को सौंप दिए गए। डॉ. कैलब एक बड़े वैज्ञानिक एवं विभाग के अध्यक्ष थे, इसलिए उन्होंने एस.पी.एस.के. का कामकाज आसानी से संभाल लिया और आगे बढ़ाया।

विज्ञान यात्रा - पंजाब के अग्रणी: विज्ञान संचारक रुचिराम साहनी के संस्मरण,
पुस्तक से साभार।
प्रकाशक: विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली, 1999।
संपादक: नरेन्द्र सहगल व सुबोध महंती।
चित्र: अमिताभ पांडेय।
हिन्दी रूपांतर - जगदीश सक्सेना।

रुचिराम साहनी के काम के दस्तावेज़ीकरण की शुरुआत चाहे संयोगवश ही हुई हो, परन्तु नरेन्द्र सहगल एवं विज्ञान प्रसार के अथक प्रयास के बिना यह संभव ही नहीं होता। इसे संयोग ही कहा जाएगा कि सन् 1990 में एक फिल्म निर्माता नंदन कुध्यादी ने बीरबल साहनी के पिता रुचिराम साहनी से संबंधित कुछ पन्ने नरेंद्र सहगल को पढ़ने के लिए दिए। नंदन खुद एक फिल्म के सिलसिले में रुचिराम साहनी के काम पर कुछ शोधकार्य कर रहे थे। इस सामग्री को पढ़कर सहगल काफी प्रभावित हुए और उन्होंने रुचिराम साहनी के काम से संबंधित ऐसी और सामग्री की खोजबीन शुरू की जो अभी तक सामने नहीं आई थी। अखबारों में भी विज्ञापन दिए गए कि किसी व्यक्ति के पास रुचिराम साहनी के बारे में जो भी जानकारी हो, उसे एन.सी.एस.टी.सी. तक पहुंचाएं। इस प्रयास में रुचिराम जी के परिजनों ने भी काफी मदद की। धीरे-धीरे रुचिराम साहनी के काम के बारे में जो जानकारियां एवं आत्मकथात्मक दस्तावेज़ सामने आए उस सब को विज्ञान प्रसार ने एक किताब की शक्ल दी जो आज हमारे सामने है।